औपशमिक औदायिक भाव

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

गुणस्थानों का विकास, आत्मा का उर्ध्वारोहण है। आठवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेने पर जीव उर्ध्वारोहण करता है। उर्ध्वारोहण की दो श्रेणियां हैं–उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। जिस जीव में मोह की प्रकृतियों को क्षय करने की सामर्थ्य है वह क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होकर उर्ध्वारोहण करता हुआ दसवें गुणस्थान से सीधा बारहवें में चला जाता है। जिस जीव में मोह कर्म की प्रकृतियों को सवर्था क्षीण करने का भाव नहीं होता वह उनको उपशान्त करता है। वह उपशम श्रेणी में आरूढ़ होकर उर्ध्वारोहण करता है। इस स्थिति में मोह पूर्ण रूप से उपशान्त रहता है। जैन दर्शन के अनुसार शुद्ध चैतन्य जीव का मूल स्वरूप है। परन्तु कोई भी संसारी जीव अपने मूल स्वरूप में उपलब्ध नहीं होता। वह अनादि काल से कर्म परमाणुओं से संयुक्त है। जीव इस जन्म में अपने प्रयत्न से उदय, उपशम, क्षयोपशम आदि विविध रूपों में अपने अस्तित्व को अभिव्यक्त करता है। अस्तित्व की यह अभिव्यक्ति ही भाव कही जाती है।

आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को विकृत करने वाला मोहकर्म है। जब यह कर्म क्षीण होता है तब आत्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप प्रकट होता है। जीव के न्यूनतम विकास की स्थिति में मोहनीय कर्म मिथ्यात्व और असंयम के इन दोनों रूपों में हमारी चेतना को प्रसफुटित नहीं होने देता। जब ये दोनों पूरी तरह हट जाते हैं तो विशुद्ध चैतन्य जागृत हो जाता है। इन दोनों स्थितियों के बीच आत्मा में अच्छे–बुरे भावों का आरोह–अवरोह होता रहता है।

भाव चेतना का परिणाम है। जीव का स्वरूप पंचभावात्मक है। कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्था अवदायिक भाव कही जाती है। मोह कर्म के उपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था औपशमिक भाव कही जाती है। कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायिक भाव कहलाती है। ज्ञानावरणादि घाति कर्मों के क्षयोपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायोपशमिक भाव कहलाती है। परिणमन से होने वाली आत्मा की अवस्था परिणामिक भाव है। कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्थाओं में लेश्या के छः प्रकार भी

परिगणित है। लेश्या की कषाय परिणाम जनित, कर्म परिणाम जनित और योग परिणाम जनित तीनों के औदायिक रूप को स्पष्ट करती है। कषाय मोहनीय कर्म का उदय है। कर्म परिणति में कर्म का उदय सहजगम्य है और योग परिणाम भी योगत्रय जनक कर्म के उदय का ही फल है। जीव अपने कर्मों के उदय से ही कृष्णादि द्रव्यों का सानिध्य प्राप्त करता है। इसीलिए लेश्या को जीवोदय निष्पन्न भाव कहा गया है। जीव अपने कर्मों के उदय के कारण विभिन्न गतियों में जाता है। लेश्या से भाव बदलते हैं। प्रशस्त लेश्याओं के होने में कर्मों के क्षय, उपशम और क्षयोपशम का बहुत बड़ा योग है। शुभ लेश्याएं नाम कर्म के उदय से औदायिक भाव में अन्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक भाव में तथा अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से क्षायोपशमिक भाव में समाविष्ट होती हैं।

कर्म शास्त्रीय मीमांसा में औदायिक व्यक्तित्व पहचान के लिए अज्ञान, निद्रा, सुख–दुःख, आस्रव, वेद, आयु, गति, जाति, शरीर, लेश्या, गोत्र, प्रतिहतशक्ति, छदमस्थता, असिद्वत्व जैसे औदायिक भाव बतलाये गये हैं। इनके आधार पर औदायिक व्यक्तित्व का निर्माण होता है। जब तक प्राणी कर्म से बंधा है तब तक अपने कृत कर्मों के अनुसार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में भ्रमण करता रहता है। जन्म और मृत्यु की इस परम्परा से कभी सुख कभी दुख भोगता है। उसके भीतर कषायों की प्रगाढ़ता रहती है। अच्छे–बुरे संस्कारों का वह अक्षय भण्डार होता है। लेश्या रूप भाव संस्थान उसके सूक्ष्म शरीर के साथ जुड़े रहते हैं। यद्यपि लेश्या किसी कर्म का उदय नहीं है पर वह पर्याप्ति नामकर्म के उदय अथवा पुद्गल बिपाकी शरीर नाम कर्म और कषाय इन दोनों के उदय से निष्पन्न होती है।

जैन साहित्य में सभी औदायिक भाव बंध के कारण है। मोह जनित औदायिक भाव ही वास्तव में बंध का कारण है। इसके अभाव में सभी भाव क्षायिक बन जाते हैं। जब तक मोह की सत्ता रहती है तब तक मन पर वासनाएं राग–द्वेष जनित संस्कार हावी रहते हैं। जिससे दृष्टिकोण सही नहीं बन पाता। बुद्धि असंतुलित हो जाती है। अच्छा आचरण चाहता हुआ भी व्यक्ति अच्छा नहीं कर पाता। वह क्रोध, मान, माया और लोभ की तीव्र ज्वाला में जलता रहता है। उसकी कथनी और करनी में बहुत फर्क होता है।

छदमस्थ व्यक्ति वह होता है जो झूठ बोलता है, चोरी करता है, इन्द्रिय सुखों में डूबा रहता है, पूजा सत्कार की महत्वाकांक्षा रखता है। पाप को पाप समझते हुए भी उसका आचरण करता है। जो सोचता है वैसा कहता नहीं और जैसा कहता है वैसा करता नहीं। इसका कारण यह है कि उसकी मिथ्या दृष्टि रहती है। मिथ्यात्व की सत्ता में नकारात्मक विचारों का विकास होता है। प्रज्ञा का जागरण सम्भव नहीं हो पाता। अज्ञान से आदमी मूढ़ बन जाता है। मिथ्यात्व की उपस्थिति में मनुष्य की अन्तहीन आंकाक्षाएं बढ़ती जाती हैं। क्रोध आदि आवेग भी अपना प्रभाव डालते हैं जिससे चंचलता बढ़ती जाती हैं। ऐसी स्थिति में प्राणी संयम की ओर नहीं बढ़ पाता। इसीलिए अशुभ लेश्या वाला व्यक्ति आस्रव प्रवृत्त वाला होता है। शुभ लेश्या से शुभ कर्म और अशुभ लेश्या से अशुभ कर्म का बंध होता है। पुण्य–पाप दोनों विजातिय तत्व हैं। पुण्य ग्राह्य है और पाप त्याज्य है।